सत्यांश

प्रतिक्रांति की धारा

नियम-कानून जब परिवर्तन, सुधार-क्रांति के अस्त्र नहीं बनते, तक कानून के ही विरुद्ध विद्रोह होता है। आधुनिक समय में भी कितने ही ऐसे नए-पुराने कानून हैं जो सामाजिक उत्थान और सद्क्रांति के वाहक न बनकर, उन्हें बाधित करने वाली प्रतिक्रांति की धारा सिद्ध हो रहे हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 498ए इसी प्रकार का कानून है, जो बनाया तो गया था दहेज उत्पीड़न और घरेलू हिंसा से बेटियों-बहुओं को बचाने के निमित्त, किंतु समय बीतने के साथ यह पति-पत्नी के अन्यान्य न जाने कितनी और कैसी-कैसी समस्याओं को सुलझाने-उलझाने का प्लेटफॉर्म बनता गया। दहेज उत्पीड़न और घरेलू हिंसा से बिल्कुल परे भी जहाँ समस्या पत्नी-बहू के अपने कारण ही होती है, वहाँ भी परेशानी को 498ए के साँचे में ढालकर मामला दर्ज कराके चलाया जाता है, जो आपराधिक और गैरजमानती होता है, यानी सजा से पहले ही गिरफ्तारी हो सकती है, न्यायिक हिरासत में भेजा जा सकता है।

बहू-पत्नी की किसी भी दिक्कत के लिए 498ए के अंतर्गत दहेज प्रताड़ना और घरेलू हिंसा का मामला चलाना सर्वथा अनुचित और गैरकानूनी है। दुराग्रहवश, कानून जिस प्रयोजन के लिए बना था, उसके लिए अत्यल्प प्रयुक्त होकर, इतर विषयों-समस्याओं के लिए अधिक दुरुपयोग में आ रहा है। जिन लोगों ने दहेज न लेने-देने की शर्त पर सादगी से आदर्श विवाह किया और किन्हीं अन्य कारणों से दाम्पत्य जीवन में कटुता आ गई, उनके ऊपर भी दहेज उत्पीड़न का मुकदमा अदालतों में चलता है। वे तब तक दहेज के लिए प्रताड़ित करने वाले दोषी बने रहते हैं, जब तक कि बरी न हो जाएँ और जरूरी नहीं कि बरी हो ही जाएँ।

बहू या पत्नी की किसी भी कठिनाई को 498ए के अंतर्गत रख देने से मूल समस्या हमेशा के लिए पर्दे में गोपनीय रहकर अनसुलझी रह सकती है। अतः मूल समस्या अदालत में जानी चाहिए। हो सकता है कि उस पर पहले से कानून न हो, परंतु बिना कानून के भी न्याय हो सकता है; किंतु तब, जब न्यायाधीश उच्च कोटि के विवेकवान और पूर्णतः निष्पक्ष हों। जहाँ किसी अकल्पित स्थिति के लिए पूर्वनिर्मित कानून नहीं है, वहाँ भी किसी को उत्पीड़ित होने और अनाचार-अत्याचार करने की छूट नहीं होती। जीवन व्यवहार के प्रत्येक विषय को लिखित रूप देना संभव नहीं होता। इंग्लैंड का नियम-कानून अलिखित परंपराओं से बहुत हद तक चलता है, पर वहाँ अधिक समस्या नहीं होती, जबकि भारत में बहुत कुछ लिखित में स्पष्ट है, फिर भी अलग-अलग स्वार्थी व नासमझ व्याख्याओं के कारण कठिनाई उत्पन्न होती है। नियम-कानून की व्याख्या का सर्वोच्च अधिकार न्यायालय को प्राप्त है। वहाँ भी न्यायाधीशों की राय कई संवेदनशील मुद्दों पर न केवल अलग-अलग होती है, बल्कि एक-दूसरे के विपरीत भी होती है, फिर बहुमत से निर्णय लेना पड़ता है। एक ही तरह के मामले में विभिन्न अदालतों का निर्णय भिन्न-भिन्न तरह का और परस्पर विरुद्ध भी होता है। भारत में मंत्रियों, प्रशासकों, न्यायाधीशों के बारे में एक आम धारणा और उसका उदाहरण भी मिलता है कि वे 'अपनों' के साथ पक्षपात करते ही हैं, अतः जहाँ अपने हों, उन मामलों से इनसे स्वयं हट जाने की उम्मीद की जाती है, जबकि पुराने राजतंत्र में ऐसे राजाओं की कमी नहीं थी जो न्याय करते वक्त अपनों की कुर्बानी देने से नहीं चूकते थे। न्याय का तकाजा है कि एक तरह के अपराध करने वाले जहाँ अपने और पराए हों, वहाँ सजा पहले अपनों को और वह भी सख्त मिलनी चाहिए। चूँकि 498ए का मुकदमा करने वाली पत्नी या बहू होती है, अतः आरोपों को पहली नजर में ही सही मान लिया जाता है। किसी स्त्री द्वारा यौन उत्पीड़न और बलात्कार का आरोप लगाए जाने पर भी ऐसा ही होता है। दोनों ही स्थितियों में यह माना जाता है कि कोई बहू-पत्नी अपने पति और उसके परिजनों के खिलाफ तथा कोई स्त्री किसी पुरुष पर यौन अपराध का आरोप लगाते हुए यों ही इतनी दूर तक नहीं जा सकती। मामला झूठा हो या सच्चा - निसंदेह कोई-न-कोई बात तो होती है। परंतु पहले किसी भी कारण से सहमति से शारीरिक संबंध बनाकर आनंद लेना और बाद में अन्य या उसी कारण से बलात्कार का रूप देना कहाँ का न्याय है? यहाँ या तो स्त्री-पुरुष दोनों ही दोषी होते हैं अथवा दोनों ही दोषी नहीं होते, लेकिन दोषी केवल पुरुष को माना जाता है।

किसी भी आरोप के अदालत में गलत या सही साबित होने में बरसों लग जाते हैं। 498ए चूँकि गैरजमानती मुकदमा

है, अतः जमानत के लिए निचली अदालतों से लेकर उच्च न्यायालय और कई बार सर्वोच्च न्यायालय तक का चक्कर लगाना पड़ता है जो श्रमसाध्य अर्थसाध्य कार्य है। यह साधारण व आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के बूते से बाहर की बात होती है। सर्वोच्च न्यायालय में किसी छोटे मामले को ले जाना भर लाखों रुपये का बजट चाहता है। ऐसे मामलों में सामान्यतः जमानत निचली अदालतों में नहीं मिलती। कई बार जमानत पर बेर रखकर आरोप की सत्यता-असत्यता जाँचे-परखे बिना सुलह-समझौते के लिए प्रेरित किया जाता है, जहाँ पति पक्ष से न्यायिक परिधि के भीतर पैसे की खुलेआम बोली लगवाई जाती है। जमानत के लिए आरोपी न्यायालय में जाता है, पर कई बार उसे जमानत के एवज में पति-पत्नी की स्थिति जाने बिना मासिक रकम देने का आदेश प्राप्त होता है, जबकि भुगतने वाले की क्षमता से अधिक कोई भी सजा अन्यायिक न्याय है या न्यायिक अपराध है। यदि आरोप झूठा है, तो यह आर्थिक दंड पति के लिए जले पर मिर्च की तरह होता है। झूठे आरोपों के रहते पत्नी के साथ और सच्चे आरोपों के रहते पति के साथ रहना हो सकता है? एकसाथ रहने पर आरोपों के साथ न्याय कैसे संभव है? आरोपित होने पर मंत्रियों को इस्तीफा देना पड़ता है, क्योंकि पद पर रहने से जाँच प्रभावित होती है। इसलिए समझौते की कोई भी कोशिश आरोपों की गंभीरता जाँचने के बाद ही होनी चाहिए। दंपती भी आरोपों से निकलने के बाद ही पति-पत्नी रूप में एकसाथ रहने के हकदार हो सकते हैं, आरोपों के रहते कदापि नहीं। शायद यह सब रिश्ते को बचाए रखने के लिए किया जाता है, पर झूठे-सच्चे आरोपों-अपराधों की नींव पर रिश्ता कैसे टिक सकता है?

किसी भी कानून के साथ नैसर्गिक न्याय यही है कि उसका सत्य की पृष्ठभूमि में अनुपालन हो, झूठ की पृष्ठभूमि पर नहीं। जिस निमित्त बना हो, वहीं उसका उपयोग हो; अन्यथा एक जगह कुछ लोगों को राहत देगा, वहीं दूसरी जगह दुरुपयोग में आने के कारण बहुतों को परेशान भी करेगा। प्रताड़ना व हिंसा से स्त्री को मुक्त कराने के नाम पर 498ए पारिवारिक कलह-क्लेश और घरेलू हिंसा का नया रणक्षेत्र तैयार कर रहा है। यह बच्चों-महिलाओं की प्रताड़ना, संबंधों की ब्लैकमेलिंग और रिश्ता बनाकर धनउगाही जैसे घृणित कार्य का कारगर अस्त्र बन रहा है। पारिवारिक विघटन और आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक शोषण का जरिया सिद्ध हो रहा है, बेशक कहीं भी स्त्री के उत्पीड़न से भी परिवार मजबूत नहीं होता। जितनी महिलाओं को कानूनी संरक्षण मिला है, उनसे कई गुना अधिक महिलाओं-बच्चों और पुरुषों की जिंदगी में जहर घोलने का काम इस कानून द्वारा हुआ है। यह सब किसी आरोप को जाँचे बिना प्रारंभिक तौर पर सही मानने की परिपाटी के कारण होता है। चाहे कोई पत्नी-स्त्री ही आरोप लगाने वाली हो, उसकी बात को आप्त वचन की तरह मानना अनुचित है। तुलसीदास की तरह यह कहना शायद मुनासिब न लगे कि आलस्य, झूठ, चंचलता, माया-मोह-कपट, भय, अविवेक, अतृप्ति और क्रूरता जैसे अवगुण नारी के हृदय में सदैव रहते ही हैं - ''नारी स्वभाव सत्य कवि कहहूँ। अवगुण आठ सदा उर रहहूँ।। आलस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अतोष अदाया।।'' फिर भी महिलाएँ चाहे झूठ ही न बोलती हों, पर झूठ भी बोलती हैं - इसे मानने में संकोच नहीं होना चाहिए। रागात्मक गहराई में भी किसी को शारीरिक रूप से नग्न करना आसान है, पर हार्दिक रूप से मुश्किल। सबमें कुछ न कुछ अवगुण रहता है, पर इन्हें स्वयं स्वीकारना मुक्ति पाने के लिए जरूरी है। इस प्रकार रूढ़ियाँ-बुराइयाँ स्त्री में भी होती हैं। यदि ऐसा न होता तो आधी आबादी के बल पर समाज-संसार स्वर्ग सदृश बन गया होता। यह सही है कि समाज में पुरुषसत्तात्मक मूल्यों का वर्चस्व है, किंतु अब महिलाओं की सत्ता दिनोंदिन हर क्षेत्र में बढ़ती जा रही है। राज्य प्रशासन, सरकार व कानून के साथ अदालतें भी उनके पक्ष में खड़ी हैं। इन सबके बावजूद, स्त्री-सत्ता न होने का दुखड़ा सुनाया जाता है। लेकिन जहाँ उसकी सत्ता चलती है, वहाँ भी समस्याएँ जस-की-तस हैं, क्योंकि सत्ता के बिना ठीक से जीने की कला विकसित नहीं हुई है, इसलिए कहीं सत्ता के प्रति सकारात्मक नजरिये के कारण, तो कहीं स्वसत्ता के अभाव में नकारात्मक नजरिये की वजह से सत्ता की सत्ता बनी हुई है।

आधुनिकतम शिक्षित परिवेश में किसी स्त्री-पुरुष को आसानी से फुसलाया नहीं जा सकता - यह अर्द्धसत्य ही है, क्योंकि बहुतों को आज भी अत्याधुनिक तरीके से बरगलाया जाता है और न जाने कितने लोगों को स्वयं भी बहकने में ही मजा आता है। अनेक स्त्रियों को बहला-फुसला कर जिंदगी खराब कर दी जाती है, वहीं कई स्त्रियाँ तबाह करने के लिए ही किसी के जीवन में समाती हैं। इस चरम लक्ष्य की साजिश में कई बार स्वयं भी बर्बाद हो जाती हैं। घरेलू हिंसा, दहेज प्रताड़ना और बलात्कार के लिए बने भारतीय कानूनों में ऐसी स्थिति पर नियंत्रण का कोई प्रावधान नहीं है; न ही सच्चाई, निर्दोषता और न्याय को प्रथम दृष्टि में ही संरक्षित करने का व्यावहारिक प्रचलन है। वस्तुतः जब कोई भी चीज या वस्तु अनाड़ी अथवा गलत हाथों द्वारा प्रयुक्त होती है, तो वहाँ नाकारापन सिर चढ़कर बोलता है। पति-पत्नी में कानूनी अलगाव ही नहीं, तलाक हो जाने

के बाद भी 498ए के अंतर्गत मुकदमा चलते रहने या चलने के उदाहरण भी मिल जाते हैं। संसार में कहीं भी कानून का ऐसा विचित्र अनुपालन नहीं होता। इसलिए अमेरिका, कनाडा सहित कई देश अपने नागरिकों खासकर भारत आने वाले पर्यटकों को समय-समय पर इस दहेज प्रताड़ना और घरेलू हिंसा कानून के प्रति आगाह करते रहते हैं कि भारतीय अदालतों में ऐसे मामलों में एक बार फँस जाने पर निकलने में बहुत अधिक रुपयों की जरूरत पड़ती है, फिर भी निकल पाना आसान नहीं होता। भारतीय स्त्री से शादी या शादी जैसा कुछ करके पुरुष इस कानून से बँध जाता है कि पत्नी को पूरे प्यार व सम्मान के साथ रखने की जिम्मेवारी पति की है, पर पत्नी यह सब न चाहे तब? भला ऐसी कौन-सी पत्नी होगी जो यह सब न चाहे। खैर! थोड़ी कोताही हुई या फिर पत्नी ने जानबूझकर विषकन्या का रूप धारण कर लिया, तो पति 498ए का मुजरिम बन जाता है। फिर जमानत के लिए दौड़धूप, गिरफ्तारी से बचने का उपक्रम, गुजारा भत्ता देने का जुगाड़ और 'वन टाइम सेटलमेंट' के लिए भरपूर रकम भुगतान करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। पत्नी परिवाद करने वाली तो होती ही है, समझौते के समय लगभग न्यायाधीश की तरह की भूमिका में भी होती है, उसकी मर्जी सर्वोपरि रहती है। अदालत से बाहर ऐसी भूमिका की तलाश काफी कठिन है।

महिलाओं को संवद्धित-संरक्षित के लिए राज्य पति की जमानत अर्जी का साधारण स्थिति में विरोध करता है, जबकि कई जगह पति पक्ष की मानहानि व अन्य नुकसान विशुद्ध रूप से राज्य प्रशासन के अंग-उपांगों द्वारा सीधे या परोक्ष ढंग से पहुँचाई गई होती है, जहाँ पत्नी-स्त्री या तो मोहरा बनाई गई होती है या उत्साहवश खुद बनती है। जहाँ यह रहस्य प्रकाश व पकड़ में आने लगता है, वहाँ कुछ प्रलोभन देने का प्रयास किया जाता है। किसी स्त्री का थोड़े समय के लिए भी पति रहे व्यक्ति के सारे नागरिक व मौलिक अधिकार खत्म हो जाते हैं, इंसानी मूल्यों और मानवीय अधिकारों से वंचित होना पड़ता है। आपराधिक मामला चलाकर उसे गिरफ्तारी-हिरासत में रखा जा सकता है। मूल्यों को तोड़ने वाली स्त्री को मुँहमांगी रकम देकर कृतज्ञ होना पड़ सकता है। रिश्तों-संबंधों का अलगाव तो फिर भी आदमी झेल लेता है, परंतु आत्मिक जीवन मूल्यों के टूटने का विक्षोभ तो रिश्तों के अंदर भी और बाहर भी सदैव सालता है। भारत में स्त्री-पुरुष की आत्महत्या का अनुपात 2 : 3 है, जिनमें लगभग 50 प्रतिशत विवाहित पुरुष होते हैं, जबकि उसकी आधी 25 प्रतिशत विवाहित महिलाएँ होती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि कुछ मामलों में निर्दोष पुरुष को संरक्षण और न्याय देने वाली कानून व्यवस्था नहीं है। न्यायालय में भी जब अन्यायिक न्याय होता है, तब पुरुष आत्महंता बनता है या फिर हिंसा-अपराध द्वारा अपने पक्ष में न्याय खोजने की कोशिश करता है। स्त्री किसी खुन्नस के लिए 498ए का आश्रय लेती है, तो वहीं पुरुष 498ए में रहते हुए अन्यत्र खुंदक निकालने के लिए व्यग्र रहता है। इस प्रकार दहेज प्रताड़ना और घरेलू हिंसा के प्रति जुगुप्सा उत्पन्न न होकर आंतरिक व प्रतिशोधी उत्ताप बढ़ता जाता है।

498ए स्त्री-पुरुष समानता के सिद्धांत वाले कानून की धारा नहीं है। संरक्षित करना और बात है, पर संरक्षण के नाम पर अन्य के नैसर्गिक व मानवीय हकों को मारना बिल्कुल प्रतिगामी बात है। वस्तुतः यह रिश्तों को संपुष्ट करने की बजाय सौदेबाजी, ब्लैकमेलिंग और बाजारू रूप देने तक सीमित है, इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसे 'कानूनी आतंकवाद' की संज्ञा दी है, जिसकी आड़ में कितने छुपे-अनछुपे अनाचार-अत्याचार पनपते हैं। 498ए के ज्यादातर मुकदमे खारिज हो जाते हैं, पर जो मानसिक, आर्थिक, सामाजिक हानि हो गई होती है, उसकी भरपायी नामुमकिन है। मामले खारिज होते हैं, क्योंकि गलत-झूठे होते हैं या फिर सही होने पर भी वैवाहिक संबंधों के सभी पहलुओं के साक्ष्य-प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पाते। दोनों ही स्थितियाँ चिंतनीय हैं, जिस कारण बहुत सी स्त्रियाँ न्याय से वंचित रह जाती हैं और पुरुष भी। वस्तुतः दाम्पत्य संबंधों के झगड़े को निपटाने के लिए अलग किस्म की विमर्श-न्याय व्यवस्था की आवश्यकता है। यह केवल नीति और न्याय से जुड़ा मामला नहीं है, बल्कि समाज, संस्कृति, धर्म-अध्यात्म, मानवता और आत्मा से जुड़ा प्रश्न भी है। स्त्री-पुरुष रिश्ता रखने या न रखने के लिए बिल्कुल स्वतंत्र हो सकते हें, पर साथ या अलग रहते हुए एक दूसरे के व्यक्तित्व को विकृत बनाने और चोट पहुँचाने के लिए कतई स्वछंद नहीं हो सकते। शादी-विवाह एकदम सादगी से संपन्न होना चाहिए और यदि अलगाव की नौबत आए, तब पति-पत्नी का गुजारा कैसे चले, इसके लिए केवल पति पर केन्द्रित रहने की बजाय सरकार व न्यायालय को पति-पत्नी के लिए संसाधन उपलब्ध कराने के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। वस्तुतः इस कानून में उतना खोट नहीं, जितना गलत ढंग से गलत जगह इस्तेमाल किया गया है। इसी कारण यह हमेशा-हमेशा के लिए पुरुष वर्ग को असुरक्षित बनाकर अँधेरी गुफा में ढकेलने लगा है, वहीं स्त्री को भी .....।